क्या शिक्षा के उद्देश्यों का पुनर्निधारण आवश्यक है ?

❑ प्रो. जमना लाल बायती

शिक्षा समाज की संस्थिति के समान्तर स्वरूप ग्रहण करती है । समाज की प्रगति अथवा मानव जीवन की बेहतरी की ऊर्ध्व दिशा में शिक्षा अहम् भूमिका निभाती है । शिक्षा की यह भूमिका बच्चे के समाजीकरण से ही शुरू होकर जीवन-पर्यन्त कायम रहती है । समाज से शिक्षा का अन्तर्सम्बन्ध गतिशील और द्वन्द्वात्मक है । समाज में आने वाले परिवर्तन अथवा उथल-पुथल शिक्षा के उद्देश्यों को पुनर्परिभाषित करते हैं और उसके स्वरूप को फिर से रूपायित करते हैं । वर्तमान वैश्वीकरण, बाजारवाद और संचार से सिकुडी दुनियां के उत्तर-आधुनिक समाज ने रूपान्तरण की तीव्र प्रक्रिया से गुजरकर अपना रंग-रूप लगभग पूरी तरह बदल लिया है । ऐसी स्थिति में क्या शिक्षा के उद्देश्यों का पुनर्निधारण आवश्यक है, इस प्रश्न पर यहां विचार किया जा रहा है

बीसवीं सदी का अन्त सन्निकट है तथा इक्कीसवीं सदी में प्रवेश की तैयारी है । अब समय की यह मांग है कि शिक्षा के क्षेत्र की उपलिब्धयों तथा असफलताओं पर विचार किया जाये । हम कितने आगे बढ़े हैं ? कहां असफलतायें मिली हैं ? किन क्षेत्रों में कीर्तिमान के साथ सफल हुए हैं तथा किन क्षेत्रों में पुनर्विचार कर संशोधन या परिवर्तन किया जाये ? या वे कौन कौन से क्षेत्र हैं जिनमें 21 वीं सदी में बिना किसी परिवर्तन के कार्य जारी रखा जाय या उनमें विचार विमर्श कर संशोधन हेतु निर्णय लिया जाये । इस दृष्टि से विचार करते समय आज की वैश्विक स्थिति को ओझल नहीं किया जा सकता, आज किसी एक राष्ट्र या क्षेत्र की दृष्टि से ही विचार नहीं किया जाना चाहिए । आज आवश्यकता इस बात की है कि अगली पीढ़ी में सुसंस्कार का ध्यान रखते हुए शिक्षा के समग्र अर्थ पर भी ध्यान देना होगा । यहां यह भी विचारणीय है कि शिक्षा का कार्य केवल शिक्षक का ही नहीं है तथा शिक्षा को केवल विद्यालय के कमरों में कैद नहीं किया जा सकता । बच्चा जिस वातावरण में रहता है, खेलता कूदता है, संगी साथियों से बातचीत करता है - उस वातावरण से भी बच्चा बहुत कुछ सीखता है, वह वातावरण भी बच्चे को शिक्षित करता है। इस वातावरण के बनने बिगड़ने में माता-पिता, पड़ौसी, शिक्षक, संगी-साथी और मोटे रूप से समूचे समाज का हाथ होता है। अच्छे नागरिक के निर्माण में इन सबकी अपनी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका है, इसी दृष्टि से इनका योगदान निश्चित किया जाना चाहिए और यह सब निश्चय होगा उस समाज द्वारा जिसमें बालकों को रहना है, जीवन बिताना है ।

शिक्षा की गुणवत्ता का निर्धारण करते समय व्यक्ति तथा समाज के संबंधों को ध्यान में रखा जाना जरूरी है । यदि आत्म केन्द्रित, क्रोधी, आक्रामक, अति महात्वाकांक्षी, लालची, धोखेबाज, प्रतिस्पर्द्धी, झूठे, फरेबी, ईर्ष्यालु नागरिक पैदा किये गये तो समाज सुसंगठित नहीं होगा । इसके विपरीत यदि शान्तिप्रिय, धैर्यशील, अहिंसक, सहयोगी, क्षमा का महत्व जानने वाले नागरिकों का निर्माण किया गया तो समाज संगठित होगा, रचनात्मक कार्य करेगा, विकास के मार्ग पर आगे बढ़ेगा, एक दूसरे की विपत्ति के समय मदद करेगा, समरसतापूर्ण समाज होगा । यदि पूंजीवादी समाज व्यवस्था है, गलाकाट प्रतियोगिता है, मुक्त अर्थ व्यवस्था है तो समाज में हिंसा हो सकती है, वर्ग विभेद हो सकते हैं । समाज की पुनर्रचना के लिये शिक्षा ही अमोघ शस्त्र है क्योंकि शिक्षा से ही व्यक्ति का निर्माण होता है । हां, राज्य, शासन तथा विधायी शक्तियां एवं अभिकरण-व्यक्ति को नियन्त्रित तो कर सकती हैं पर उसकी पुनर्रचना नहीं कर सकते। इस प्रकार सही रूप में प्रशिक्षित जन बल के लिए ही नहीं बल्कि सामाजिक परिवर्तन के लिये भी शिक्षा ही उत्तरदायी है । अच्छे नागरिकों की रचना ही शिक्षा की कसौटी हो सकती है।

पिछली लगभग आधी शताब्दी से रहने के तरीकों में भारी परिवर्तन आ गया है, पूरा मानव समाज पिछली एक शताब्दी से समस्याओं से जकड़ा हुआ है, प्राकृतिक आपदायें आई हैं, अकाल, महामारी, भूकम्प, प्लेग का प्रकोप हुआ है । न केवल इतना ही बल्कि स्वास्थ्य सेवायें अपर्याप्त हैं, कृषि परम्परागत तरीके से होती है, संचार साधनों की पर्याप्त सुविधायें नहीं है । शिक्षा प्रणाली ने इन सभी परिवर्तनों में मदद की है, आधुनिक समाज में परिवर्तन के लिए जरूरी साहस, जोखिम तथा ज्ञान का विकास किया है। आज भी विश्व के कुछ हिस्सों में इन परिवर्तनों के लिये संघर्ष हो रहे हैं तथा नागरिक जानते हैं कि इन्हें कैसे प्राप्त किया जाये ? इस शताब्दी में अभियान्त्रिकी, चिकित्सा, कृषि, यातायात, दूर संचार, ऊर्जा आदि के क्षेत्र में हुई उपलब्धियां शिक्षा के विकास से ही संभव हुई हैं ।

आज मानव समाज के सामने जो कठिनाइयां हैं वे पूर्णतया भिन्न है । प्रश्न यह है कि क्या इन्हें भी अब तक समस्याओं के हल करने के तरीके से ही हल किया जा सकता है ? यदि इसका उत्तर नकारात्मक है तो शिक्षा के लिए उत्तरदायी लोगों को 21 वीं सदी की शिक्षा के क्षेत्र में एक सर्वथा भिन्न दृष्टिकोण से सोचना होगा । इस दृष्टिकोण से आज मानव समाज के सामने क्या क्या खतरे एवं चुनौतियां मुंह बायें खड़े हैं, उन पर विचार किया जाना जरूरी है । इन खतरे एवं चुनौतियों को यों लिपिबद्ध किया जा सकता है ।

बच्चा जिस वातावरण में रहता है, खेलता कूदता है, संगी साथियों से बातचीत करता है – उस वातावरण से भी बच्चा बहुत कुछ सीखता है, वह वातावरण भी बच्चे को शिक्षित करता है। इस वातावरण के बनने बिगड़ने में माता-पिता, पड़ौसी, शिक्षक, संगी साथी और मोटे रूप से समूचे समाज का हाथ होता है। अच्छे नागरिक के निर्माण में इन सबकी अपनी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका है, इसी दृष्टि से इनका योगदान निश्चित किया जाना चाहिए और यह सब निश्चय होगा उस समाज द्वारा जिसमें बालकों को रहना है, जीवन बिताना है ।

1. गुटबंदी

आज मानव समाज के सामने सबसे बड़ी समस्या उसके विभिन्न गुटों में बंटे होने की है । इन गुटों का आधार है - वर्ण, जाति, राष्ट्रीयता, भाषा, आर्थिक स्थिति, धर्म, राजनैतिक निष्ठा, व्यावसायिक वर्ग आदि । नागरिक अपने को अपनी पसंद के किसी गुट से संलग्न कर लेता है तथा दूसरे गुट से ईर्ष्या करता है, प्रतिस्पर्द्धा करता है तथा अपने गुट को ही अच्छा बताता है, उसी के हितों की रक्षा करता है तथा उसी की प्रगति के, विकास के प्रयत्न करता है । ये दल भी एक दूसरे का शोषण करते हैं, धोखा देते हैं तथा एक दूसरे का अस्तित्व ही देखने को तैयार नहीं हैं । इसी कारण अधिकांश हत्यायें होती हैं जिनके मूल में लूट-पाट, दंगा-फसाद, आतंक आदि छिपे हुए हैं । इसका कारण ढूंढना कठिन नहीं है । प्रत्येक व्यक्ति अपने को एक विशिष्ट परिवार, देश, धर्म, संस्कृति तथा दल का समर्थक बताता है, विचारधारा का मानने वाला बताता है तथा ऐसा करके वह गर्व अनुभव करता है तथा ऐसा करने के लिए अपने पक्ष में तर्क ढूंढ लेता है। तब उसका दिमाग एक वकील की तरह कार्य करता है तथा उसे मैं और मेरा ही दिखता है, वह दूसरों को निम्न या हेय समझता है तथा उन पर आक्रमण करता है । अपने दल के साथ जान पहचान बता कर वह सुरक्षा मानता है तथा वही मनुष्य की संकुचित पहचान आज शांति में सबसे बड़ी बाधा है।

2. विज्ञान तथा तकनीकी की असीमित शक्ति

युगों से मनुष्य लड़ाई, प्रतिस्पर्द्धा तथा प्रतिशोध से घिरा रहा है पर अब समय आ गया है कि इससे पिंड छुड़ाया जाये। अधिक समय तक इसे विज्ञान तथा तकनीकी शक्ति के कारण और सहन नहीं किया जा सकता । जब आदमी धनुष बाण, लाठी, भाला, चाकू आदि के साथ रहता था, वह कुछ आदमियों को मार गिराता था । पर आज क्षण भर में विज्ञान के विकास से आणविक तथा परमाणु शस्त्रों से विश्व को नष्ट किया जा सकता है तथा आज कोई भी युद्ध स्थानीय युद्ध नहीं रह गया है। एक जगह होने वाले युद्ध का प्रभाव बात की बात में पूरे विश्व में देखा जा सकता है। आणविक युद्ध से मानवता खतरे में पड़ गई है, इसलिए इस समस्या की गंभीरता अधिक स्पष्ट दिखने लगी है। मानव इतिहास ही युद्धों का इतिहास है, यदि अब भी इससे पाठ नहीं सीखा गया तो निश्चित मानिये आने वाला युद्ध ही अन्तिम युद्ध होगा ।

3. पर्यावरणीय दुर्गति

अन्य मुख्य समस्या आज पर्यावरण की है । ओजोन गैस की कमी या रिक्तता, भूमि कटाव, निर्वलीकरण, औद्योगिक प्रदूषण, अधिजनसंख्या समस्या, परमाणु शक्ति आदि का प्रभाव निरन्तर देखा जा रहा है। इन समस्याओं में से अधिकांश के लिए नागरिकों की विचारधारा ही उत्तरदायी है जो उन्होंने पिछले 50-60 वर्षों में प्रकृति के प्रति विकसित कर ली है। अपने लाभ के लिए प्रकृति का दोहन ही मुख्य ध्येय रहा है । विज्ञान तथा तकनीकी के विकास और इनकी सहायता से औद्योगिक विकास के साथ विश्व के विभिन्न देशों में प्रतिस्पर्द्धा बढ़ती जा रही है तथा हर देश प्रथम बनने का प्रयास कर रहा है और प्रथम बन कर विश्व का अधिकाधिक धन संग्रह करना चाहता है । प्रतिस्पर्द्धा वाले देश किसी भी कीमत पर केवल अपने ही देश का आर्थिक विकास चाहते हैं । पशुओं पर जीवित प्राणी के रूप में विचार नहीं किया जाता तथा उन्हें मांस प्राप्ति का साधन मात्र माना जाता है । नदियों तथा पहाड़ों पर विद्युत के स्त्रोत के रूप में विचार किया जाता है या फिर उनको पर्यटन स्थानों के रूप में लिया जाता है । नागरिक अपने को विश्व के स्वामी मानते हैं तथा प्रकृति को वे जैसे चाहें प्रयोग करना चाहते हैं । पर क्या नागरिक वास्तव में विश्व के स्वामी हैं ? क्या विश्व की रचना उनके लिये हुई है ? अन्य वस्तुओं के समान वे भी विश्व

का अंग हैं ? यदि मानव ने अपना स्वभाव, प्रकृति, विचारधारा नहीं बदली तो पर्यावरण संबंधी और भी कठिनाइयां झेलनी पड़ेंगी। आज अच्छे कम्प्यूटर तथा तेज गति से चलने वाले वायुयान तो हैं पर आदमी को श्वांस लेने के लिये शुद्ध ताजा हवा भी नहीं मिल रही है, प्रकृति के असंतुलन से अनेक बीमारियां फैल रही हैं और कालान्तर में इस धरती पर यह जीवन जीने लायक भी नहीं रहेगा ।

4. अधिनायकवादी/तानाशाही व्यवस्था

एक अन्य ज्वलन्त समस्या है अधिनायकवाद या तानाशाही की । यह समस्या मुख्यत: तीसरी दुनिया के देशों की है । इस तानाशाही के कई रूप पाये जाते हैं, यथा- सैनिक तानाशाही, धार्मिक तानाशाही, साम्यवादी तानाशाही या फिर छद्‌म प्रजातन्त्र के रूप में भी तानाशाही । बहुत कम देश ऐसे हैं जहां सही रूप में लोकतन्त्र है, जहां अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है, राजनैतिक स्वतंत्रता, प्रश्न करने की स्वतंत्रता, वैचारिक स्वतन्त्रता, लिखने की स्वतन्त्रता, अपनी अन्तरात्मा के अनुसार बोलने-कहने लिखने की स्वतंत्रता पाई जाती है । तानाशाही में विरोध का गला घोंट दिया जाता है। तानाशाह नागरिकों को बताते हैं कि क्या सोचा जाये, क्या किया जाये तथा क्या न किया जाय । इस सदी का सबसे बड़ा दुर्गुण ही तानाशाही का विकास है ।

राजकीय स्तर पर ही नहीं वरन् संगठन, समाज, व्यापार, उद्योग, या परिवार में भी तानाशाही प्रवृत्तियों का विरोध किया जाना चाहिए। इसलिए यदि तानाशाही के दोषों या समस्याओं को समाप्त करना है तो प्रत्येक नागरिक के मस्तिष्क में सही अर्थों में लोकतन्त्र की भावना भरनी होगी ।

5. परिवार का विखंडन

विवाह तथा परिवार केवल यौन संबंधों की दृष्टि से ही अनिवार्य एवं महत्वपूर्ण नहीं है वरन् अगली पीढ़ी के प्रति अपने उत्तरदायित्वों के निर्वाह के लिए भी जरूरी है । सम्भवतया मानव सन्तान ही जन्म के समय सर्वाधिक असहाय होती है । मानव शिशु को संरक्षण, देखभाल, प्यार, सहायता की दिनों या सप्ताहों ही नहीं वरन कई महीनों तक तथा कुछ मामलों में वर्षों तक आवश्यकता होती है । ऐसी सहायता की अवधि 20-25 वर्ष भी हो सकती है। इस अवधि में मानसिक, संवेगात्मक और आध्यात्मिक वृत्तियां विकसित होती है, जबकि पशु-पक्षियों की सन्तान को ऐसी किसी सहायता की आवश्यकता नहीं होती है । बच्चे का विकास माता-पिता के सानिध्य के सिवाय अन्यत्र कहीं भी उचित रूप से नहीं हो सकता । शिशु के जन्म लेते ही माता पिता का यह उत्तरदायित्व निश्चित हो जाता है पर आज के आधुनिक समाज में माता-पिता का यह सहयोग या वृति समाप्त प्राय: हो रही है, टूट रही है या निश्चय ही दिन प्रतिदिन कम होती जा रही है। कुछ वर्गो में विवाह-विच्छेद की संख्या बढ़ती ही जा रही है, इससे भी बच्चों का पालन पोषण विपरीत रूप से प्रभावित हुआ है । यह सन्तानों का दुर्भाग्य ही कहा जाना चाहिए क्योंकि विवाह विच्छेद का दुष्परिणाम सर्वाधिक बच्चों को ही भुगतना पड़ता है, अब समय आ गया है कि हमें अपनी गलतियों पर सोच विचार कर उनका निवारण करना है, जीवन प्रणाली में संशोधन, परिवर्तन करना है ।

6. तनावयुक्त जीवन

आज मनुष्टय चाहे वह कहीं रह रहा हो, भारत में या अमेरिका में, वयस्क या वृद्ध, धनी या निर्धन, सहज जीवन नहीं जी रहा है, वह हर स्थान पर तनाव में रहता है। विज्ञान तथा तकनीकी विकास ने जहां मनुष्य की सुख सुविधा बढ़ाई हैं, वहीं वह तनाव में अधिक रहने लगा है । चिकित्सा सेवाओं के सुधार तथा विकास ने मनुष्य के जीवन की अवधि तो बढ़ाई है पर तनावपूर्ण जीवन खुशहाली में नहीं बदल सका है ।

यदि शिक्षा सही अर्थो में अपना काम करे, फल की इच्छा न कर कार्य करने का दर्शन विकसित हो, संगी-साथियों, मित्रों, पड़ौसियों, वृद्धों के प्रति संवेदनशीलता विकसित हो सके, बड़े लाभ के लिए छोटा लाभ त्यागा जा सके, पूरा विश्व ही एक परिवार है, यह मान्यता हो, जीव मात्र के प्रति सद्‌भावना हो तो तनावमुक्त जीवन की आशा की जा सकती है । इस विवेचन से स्पष्ट है कि तनावमुक्त जीवन के लिए शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है।

7. समाज की जड़ता

अन्तिम पर महत्वपूर्ण समस्या है समाज की जड़ता । समाज अपने पुराने रीति रिवाज, अंधविश्वास, रूढ़ियों, परम्पराओं आदि को दोहराता रहता है जो आने वाली पीढ़ी को हस्तान्तरित हो जाती है तथा समस्यायें बढ़ती चलती हैं । यदि कोई सिख अपने बच्चों से कहे कि ईसाइयों के बच्चे दुश्मन हैं तथा ईसाई अपने बच्चों को सिखों की सन्तान को दुश्मन के रूप में प्रस्तुत करें तो वैमनस्य बढ़ेगा। दुश्मनी बढ़ेगी । भाईचारा विकसित नहीं होगा । बाल मन यही सुनते सुनते युवा बनेगा तथा उनकी विचारधारा इसी मार्ग पर आगे बढ़ेगी । फिर विश्व शांति की बात कल्पना ही रह जायेगी। यही बात हिन्दू-मुसलमान, अरबी-ज्यूज, प्रोटेस्टेण्ट-कैथोलिक वर्ग के लिए भी कही जा सकती है। परिवार के वयस्क लोगों के पूर्वाग्रह व विश्वास बालकों में गहरे बैठ जाते हैं, घृणा बढ़ जाती है तथा समस्या विकराल बन जाती है। इसका हल क्या हो ? इसे कैसे सुलझाया जाये ?

जब तक बच्चों को शिक्षित न करें, उनमें भला बुरा या सही गलत का निर्णय करने की क्षमता अर्थात् विवेक का विकास नहीं हो जाता, यह घृणा से उत्पन्न समस्या हल नहीं होगी । इसके लिए बच्चों में आलोचनात्मक चिन्तन की आदत विकसित करनी होगी। बालक को जो कहा गया है उसे वह सत्यासत्य की कसौटी पर कसे, यदि पूर्व की बनी गलत धारणायें उसे सोचने विचारने में बाधा पहुंचाती हैं तो उनका परीक्षण किया जाना चाहिए तथा जो कसौटी पर गलत निकले, उसे छोड़ने को, आगे उस पर काम न करने को तत्पर रहना चाहिए। बालक को इस बात की स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए उसे यह सुविधा प्रदान की जानी चाहिए कि वह प्रयोग करे , शोध करे तथा निर्णय पर पहुंचे कि सही क्या है ? किसी की राय पर सन्देह करना, सही तथा गलत में अन्तर कर सकना - ऐसी वृति विकसित होने पर ही बुद्धि का विकास माना जाता है। वयस्कों के लिये बच्चों की बुद्धि के विकास के कार्यक्रम असुविधाजनक हो सकते हैं, क्योंकि बच्चे प्रश्न करते हैं । ऐसे प्रश्न पैने भी हो सकते हैं । न केवल इतना ही बल्कि बच्चे मानवीय मूल्यों वृतियों, विचारधाराओं तथा जीवन के तरीकों पर प्रश्न करते हैं, सन्देह प्रस्तुत करते हैं । माता पिता उनके प्रत्येक प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाते हैं या किन्हीं कारणों से वे उत्तर नहीं देना चाहते हैं । पर वास्तविकता यह है कि विरोध या मतभेद का आदर कीजिये, विरोध या मतभेद को प्रोत्साहित कीजिए । यदि समाज की जड़ता समाप्त ही करनी है, यथा स्थिति नहीं रखनी है तो यह प्रयास करना ही होगा अन्यथा सोचने विचारने का दायरा संकुचित क्षेत्र में कठोर या अटल या जड़ हो जायेगा।

यदि कोई सिख अपने बच्चों से कहे कि ईसाइयों के बच्चे दुश्मन हैं तथा ईसाई अपने बच्चों को सिखों की सन्तान को दुश्मन के रूप में प्रस्तुत करें तो वैमनस्य बढ़ेगा। दुश्मनी बढ़ेगी। भाईचारा विकसित नहीं होगा। बाल मन यही सुनते सुनते युवा बनेगा तथा उनकी विचारधारा इसी मार्ग पर आगे बढ़ेगी । फिर विश्व शांति की बात कल्पना ही रह जायेगी। यही बात हिन्दू-मुसलमान, अरबी-ज्यूज, प्रोटेस्टेण्ट-कैथोलिक वर्ग के लिए भी कही जा सकती है। परिवार के वयस्क लोगों के पूर्वाग्रह व विश्वास बालकों में गहरे बैठ जाते हैं, घृणा बढ़ जाती है तथा समस्या विकराल बन जाती है। इसका हल क्या हो ? इसे कैसे सुलझाया जाये ?

शिक्षा की भूमिका

अब यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि हमने कहां त्रुटि की है या ज्ञान का इतना विकास होने पर शक्ति पैदा कर, बौद्धिक ऊर्जा का विकास करके भी समस्याओं का अम्बार क्यों खड़ा है ? क्या नियन्त्रण को बदला जाये, या नियंत्रण की दिशा में संशोधन जरूरी है या नियंत्रण प्रभावी हो, क्या प्रचलित शिक्षा पद्धति से ही समस्यायें हल हो जायेंगी ? क्या और अच्छे कम्प्यूटर की आवश्यकता है ? क्या और तेज गति से उड़ने वाले वायुयान चाहिये ? क्या अधिक वस्तुएं चाहिए ? क्या अधिक ज्ञान तथा अधिक क्षमता चाहिए ? क्या इन सब साधनों से ऊपर बताई समस्यायें हल जो जायेंगी ? और यदि न हो तो क्या शिक्षा में प्राथमिकताओं पर या शिक्षा के उद्देश्यों पर फिर से विचार नहीं करना चाहिए ? इस दृष्टि से क्या अब तक के कार्य करने के तरीके पर प्रश्न नहीं किया जा सकता ?

आज की शिक्षा का रूप

आज की शिक्षा का क्या रूप है ? इस शिक्षा से किस प्रकार के नागरिकों की अपेक्षा है ? शिक्षा के उद्देश्यों में विभिन्न देशों में अन्तर हो सकता है पर मूलत: शिक्षा से समूची दुनियां में भले इन्सान बनाने का उद्देश्य ही सर्वोपरि है । एक ऐसा भला इन्सान जो बुद्धिमान, विवेकशील हो, कठोर परिश्रम करने वाला हो, अनुशासित हो, चुस्त-स्फूर्त हो, दक्ष हो, नेतृत्व करने वाला हो, आशावादी हो तथा अपने कार्य में सुगमता के साथ आगे बढ़ने वाला हो। आज शिक्षा से उच्च स्तरीय विज्ञान, कला, प्रबन्धन, संगीत एवं संस्कृति के विकास की अपेक्षा होनी चाहिए । इस दुर्गति से बचने के लिये आज की शिक्षा में क्या है ?

मानव समाज के सामने आज जो समस्यायें हैं वे मात्र शिक्षा की कमी के कारण ही नहीं हैं वरन उसके लिए और भी कई बातें उत्तरदायी हैं । ये समस्यायें अशिक्षित ग्रामीणों ने पैदा नहीं की है। वरन इन समस्याओं के प्रकाश में आने के पीछे उच्च शिक्षित व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त वकीलों, व्यापारियों, प्रशासकों, वैज्ञानिकों, अर्थशास्त्रियों, राजदूतों, पुलिस अधिकारियों का हाथ रहा है, जो योजनाएं बनाते हैं तथा सरकार, संगठन तथा व्यवसाय चलाते हैं । इसलिये शिक्षण संस्थाओं में दी जाने वाली शिक्षा के रूप, उसके प्रकार तथा उसकी गुणवत्ता पर ध्यान दिया जाना चाहिए। आज यदि इस क्षेत्र में संख्या पर ध्यान न भी दिया जाये तो बहुत अधिक या भयंकर हानि की संभावना नही है । अब यदि आज की शिक्षा पर आलोचनात्मक चिन्तन किया जाये तो स्पष्ट होता है कि इस शिक्षा से एकांगी या अधूरे नागरिक पैदा हो रहे हैं । वे कुछ ही

क्षेत्रों में विशिष्टता प्राप्त कर रहे हैं - बहुत अधिक ज्ञानी, बहुत चतुर, अति दक्ष पर जीवन के और तौर तरीकों में पुरातनपंथी, असभ्य या अति प्राचीन प्रकार के नागरिक शिक्षण संस्थाओं से निकल रहे हैं । चोटी के वैज्ञानिकों तथा इंजीनियारों ने चांद पर मनुष्य भेज तो दिया है पर वे ही अपनी पत्नी या पड़ौसी के साथ जंगली व्यवहार करते हैं । वे दुनियां के संचालन की परम शक्ति का ज्ञान रखते हैं, उसमें विश्वास करते हैं पर अपने ही जैसे साथियों के जीवन व्यवहार के बारे में बहुत कम जानते हैं । यह कैसी विडम्बना है ?

यह मानव का एकांगी या सीमित क्षेत्रीय विकास ही है जो आज की समस्याओं के लिए उत्तरदायी है । शिक्षाशास्त्रियों को यह सुनिश्चित करना चाहिये कि वे जो ज्ञान या शिक्षा विद्यार्थियों को दे रहे हैं वे उसको अपने संपर्क में आने वालों के साथ व्यवहार में लायें, प्रयोग करें तथा स्थितियों को बदलें । ऐसा शिक्षाशास्त्रियों एवं शिक्षकों को अपने विद्यार्थियों को सिखाना चाहिए, इस तथ्य की ओर आज की शिक्षा व्यवस्था में बहुत कम या नहीं के बराबर ध्यान दिया गया है फिर इसे गंभीरता से लेने का तो प्रश्न ही नहीं है ।

शिक्षा का पृथक स्वरूप

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि इक्कीसवीं सदी की शिक्षा का स्वरूप अवश्य ही भिन्न होगा । महत्वपूर्ण यह है कि शिक्षा में कैसे क्या परिवर्तन किया जाये ? किस प्रकार के आदमियों की, मस्तिष्क की जरूरत होगी ? नागरिकों में क्या क्या मूल्य विकसित किये जायें? भिन्न भिन्न देशों तथा भिन्न - भिन्न संस्कृतियों के लिए ही एक समान शिक्षा उपयुक्त नहीं होगी । वे राष्ट्र इसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर सकेंगे । पर, शिक्षा की मोटी रूपरेखा यों बनाई जा सकती है -

1. वैश्विक मस्तिष्क/दृष्टिकोण

आज विश्व एक छोटे से क्षेत्र में सिमटकर रह गया है । अत: केवल राष्ट्रीय दृष्टिकोण से ही काम नहीं चल सकता । सभी देशों के निवासी विश्व के नागरिक हैं प्रत्येक देश प्रकृति से मिली धरती के अंश का उपयोग करता है । धरती के एक हिस्से में क्या घटता है या किस चीज का वहां क्या प्रभाव पड़ता है इससे केवल वे ही प्रभावित हों, आज ऐसा नही कहा जा सकता । उदाहरण के लिए क्यूबा में यदि गन्ने की फसल बिगड़ जाती है तो केवल क्यूबा ही नहीं पूरा विश्व चीनी की कमी से प्रभावित होगा। इसलिये मस्तिष्क को वैश्विक दृष्टि से शिक्षित किया जाना चाहिए । स्थानीय समस्या पर विचार किया जा सकता है, विचार किया भी जाना चाहिए पर निर्णय लेते समय मस्तिष्क में वैश्विक दृष्टि, भूमण्डलीय विचार धारा रहनी चाहिये - यही महत्वपूर्ण है ।

2. व्यक्तित्व विकास पर बल

किसी भी राष्ट्र की मात्र आर्थिक प्रगति के लिये विद्यार्थियों को कच्ची सामग्री नहीं समझना चाहिए वरन् महत्वपूर्ण यह है कि मानव जीवन के सभी पक्षों पर सही दिशा में उनके समुचित विकास पर ध्यान दिया जाय, यथा-भौतिक, बौद्धिक, सांवेगिक, आध्यात्मिक शारीरिक आदि तभी बालक रचनात्मकता के साथ प्रसन्नतापूर्वक जीवन में अग्रसर होगा । महात्मा गांधी ने भी शिक्षा का अर्थ बताते हुए बालक के सर्वांगीण विकास पर बल दिया है। मनोविज्ञान के अनुसार हर बालक दूसरे बालक से भिन्न है । योग्यता, क्षमता, तथा विचारधारा आदि के संबंध में भी यही सिद्धांत लागू होता है पर उनकी भिन्नता भी असमान नहीं है । बच्चों की योग्यताओं, अच्छाइयों बुराइयों, कमियों, सबल पक्षों, गुणों में भिन्नता के होते हुए भी उनके व्यक्तित्व का आदर किया जाना चाहिए । भलमनसाहत या मानवता को निश्चय ही दक्षता या कौशल से ऊपर स्थान दिया जाना चाहिये।

3. समालोचनात्मक वृति को प्रोत्साहन

बहुत लोग शायद इसे पसंद न करें पर अच्छा यह होगा कि बच्चे प्रश्नों के साथ आगे आयें, वे प्रश्न पूछें न कि मात्र उत्तर ही दें । प्रत्येक आयु समूह के लिये प्रश्न भिन्न भिन्न होंगे पर यहां भी महत्वपूर्ण यह है कि बच्चों के आज्ञा मानने की अपेक्षा प्रश्न करने की योग्यता, भले बुरे का भेद कर सकने की योग्यता को प्रोत्साहन दिया जाये । चूंकि-प्रश्न करने की योग्यता एवं पहल पर डर प्रतिकूल प्रभाव डालता है अत: अच्छा यह होगा कि माता पिता या अभिभावक तथा बच्चे के बीच सम्बंधों में डर का कोई स्थान नहीं हो । बच्चा यदि गलती करता है तो करने दीजिये, उसे स्वतंत्रता दीजिये । बिना डर के उसे अनुभव से सीखने दीजिये, वयस्क या माता पिता बच्चे को उसके कार्यों पर टोका टोकी न करें, बुरा भला न कहें । ऐसा मस्तिष्क विवेकशील परिवर्तनशील, नमवीय या लचीला तथा तर्क करने पर सोचने वाला होता है, वह परिवर्तन भी स्वीकार करता है तथा वह अपने विचारों में कट्टर या दृढ़ नहीं होता है तथा किसी विचार या बात को, बिना उसकी उपयुक्तता जाने स्वीकार नहीं करता है तथा तर्क कर सोचने वाला होता है ।

4. प्रतिस्पर्धा नहीं सहयोग

आज की स्थितियों में प्रत्येक व्यक्ति अपने नाम और प्रसिद्धि के लिए काम करता है । इसका कोई औचित्य नहीं है तथा यह उसके दंभी या अहंकारी प्रवृति का सूचक है । सभी नागरिक आपस में जुड़े हुए हैं, एक दूसरे पर निर्भर है तथा बहुत कम अवसर ऐसे

आते हैं जब मनुष्य स्वयं अकेला तथा बिना किसी की सहायता लिये एकान्त में कुछ कर सके । समूह भावना के साथ तथा दूसरों के साथ समरसतापूर्ण वातावरण में काम करने की योग्यता, वैयक्तिक उपलब्धि की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। सहकार प्रजातन्त्र का मूल है। आज विद्यार्थियों में जो प्रतिस्पर्द्धा की भावना विकसित की जा रही है इससे ईर्ष्या, गलाकाट प्रतियोगिता, डाह, संदेह सहित डर एवं प्रतिशोध की भावना पैदा हो रही है, इससे लोगों में द्वेष तथा विभाजन के बीज बोये जा रहे हैं तथा प्यार व मित्रता समाप्त हो रही है । विश्व स्तर की खेल प्रतियोगिता में भी जो स्वर्णकप या मैडल या ट्रोफी जीतने को महत्व दिया जाता है,उसका आधार प्रचार तथा दिखावा है । क्या यह वास्तव में महत्वपूर्ण है कि कोई एक विद्यार्थी अन्य सभी साथियों को पीछे छोड़कर तनिक ऊंचा कूद गया है ? कौन जीता यह प्रश्न महत्वपूर्ण नहीं है - महत्वपूर्ण तो यह है कि खेल में आनन्द आया या नहीं ।

शिक्षक का सही कार्य ही यह है कि वह बालक में प्रकृति से छिपी सुन्दरता को उद्घाटित करे । निश्चय ही यह सुंदरता कला, संगीत, अभिनय, गणित, भाषा, साहित्य, विज्ञान, खेलकूद, प्रकृति अवलोकन में निहित है, वास्तविकता यह है कि जीवन का हर क्षेत्र इससे जुड़ा हुआ है । एक पूर्ण व सही अर्थों में शिक्षित एवं विकसित बालक से क्या आशय है – यह प्रत्येक शिक्षक को जानना चाहिए

5. सीखने की अपेक्षा समझ-बूझ पर आग्रह

जीवन में या विद्यालय के विषयों में स्मृति विकसित करने की अपेक्षा बुद्धि से सीखना या बुद्धि को प्रखर/पैनी बनाना महत्वपूर्ण है । यदि बच्चे को कोई सूचना दी जाये तो उसके ज्ञान या जानकारी में वृद्धि हो रही है पर सीखने की योग्यता बुद्धि है । जो सिखाया जाता है वह तो सीमित है पर सीखना असीमित है, अंतहीन है । जीवन में महान वस्तुएं वे हैं जो पढ़ाई नहीं जाती वरन् सिखाई जाती है, सीखने को तत्पर बनाना, उत्सुक या जिज्ञासु बनाना महत्वपूर्ण है। प्यार, करुणा, सौंदर्य, मैत्री आदि गुण पढ़ाये नहीं जा सकते वरन् ये संवेदनशीलता से अनुभव कराये जा सकते हैं, विकसित किये जा सकते हैं जो कि बुद्धि का ही एक अनिवार्य एवं अभिन्न अंग है। सही तथा गलत में अन्तर कर सकने की योग्यता ही बुद्धि है, विवेक है।

6. वैज्ञानिक एवं सहिष्णु वृत्ति

विश्व नागरिकता के विचार के विकास के लिए वैज्ञानिक तथा सहिष्णुता वृत्ति दोनों का अध्ययन अध्यापन जरूरी है। दुर्भाग्य से वैज्ञानिक वृति को सहिष्णु वृति से पृथक कर दिया गया है तथा शिक्षण प्रक्रिया में वैज्ञानिक वृति को ही महत्वपूर्ण स्थान दिया जा रहा है । वास्तविकता यह है कि दोनों एक दूसरे के पूरक हैं । एक का संबंध चेतना के बाह्य जगत की वस्तुओं पदार्थ, शक्ति, ऊर्जा,जगह तथा समय से है तो दूसरे का संबंध चेतना के आन्तरिक जगत की वस्तुओं शान्ति, सौहार्द्र, समरसता तथा अन्य गुणों से है। गलती से विज्ञान को विश्वास के साथ रख कर विज्ञान तथा धर्म में शत्रुता या विरोध विकसित किया गया है। वास्तविकता यह है कि दोनों एक दूसरे के पूरक के रूप में किसी एक घटना की या तथ्य की सत्यता की खोज करते हैं । यह घटना या तथ्य पदार्थ तथा चेतना दोनों का मिश्रण, सम्मिलित रूप है ।

शिक्षा को ऐसा मस्तिष्क या मस्तिष्क वाला नागरिक तैयार करना चाहिए जो वैज्ञानिक तथा धार्मिक दोनों हो और दोनों भी एक ही साथ पृथक-पृथक समय नहीं, ऐसा मस्तिष्क जो संक्षिप्त पर स्पष्ट ढंग से, आलोचनात्मक ढंग से सोचे, परीक्षण करे, विवेकशील हो, संदेह से मुक्त हो पर साथ ही उस मस्तिष्क को सौन्दर्य प्रशंसक, बुद्धि की सीमाओं की जानकारी वाला, संवेदनशील, नम्रता, सूक्ष्मदृष्टा होना चाहिए । ऐसा मस्तिष्क ही बुद्धि तथा भावना में निर्विवाद रूप से अन्तर कर सकता है । यदि ऐसा न हो सके तो समझिये कि सही अर्थों में शिक्षा नहीं हुई है । किसी भी व्यक्ति के लिए स्वयं को समझना उतना ही महत्वपूर्ण है जितना विश्व को । जब तक किसी व्यक्ति को अपने साथी की, समाज की प्रकृति विचारधारा, संबंध वृति, स्वभाव आदि की गहराई से समझने की योग्यता या कौशल प्राप्त न हो तो मानिये उसकी शिक्षा पूरी नही हुई है ।

7. पाठ्यपुस्तकों में बुनियादी संशोधन

दी हुई परिस्थितियों की दृष्टि से पाठ्यक्रम पर नये सिरे से विचार करना होगा, न केवल इतना ही बल्कि शिक्षा से समाज को जो अपेक्षाएं हैं उन अपेक्षाओं को शिक्षा के उद्देश्यों की भाषा देनी होगी । विद्यालय की स्थापना भी समाज ही करता है तो विद्यालय को समाज की अपेक्षाओं पर खरा उतरना चाहिए। इस दृष्टि से उद्दश्यों की रचना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि उस दृष्टि से पाठ्यसामग्री में भी परिवर्तन करना होगा । उद्देश्य आधारित पाठ्य सामग्री का चयन करना होगा । विश्व नागरिकता, प्रोद्योगिकी का विकास, वैज्ञानिक वृति को प्रोत्साहन, प्रतियोगिता के स्थान पर सहकार, समाज में गत्यात्मकता, पर्यावरण के प्रति सजगता आदि के विकास

पर सामग्री पाठ्यक्रम में जोड़नी होगी। प्रयत्न यह हो कि उपदेश के रूप में सामग्री प्रस्तुत करने से बचा जाये । इन गुणों पर प्रत्यक्ष कहने के बजाय कहानी, परिचर्चा, वार्तालाप या अभिनय के माध्यम से विद्यार्थियों को शिक्षा दी जाये । संभव है उद्देश्यों में परिवर्तन से पाठ्यपुस्तकें फिर से लिखानी पड़े या उनकी सामग्री में फेर बदल करनी पड़े ।

विद्यालय दिनचर्या पाठ्यक्रम एक महत्वपूर्ण अंग है । स्वयं शिक्षकों को इस दृष्टि से पुनश्चर्या पाठ्यक्रम के माध्यम से नवीन ढंग से प्रशिक्षित करना होगा । स्वयं शिक्षक इन गुणों पर विश्वास करे, इनके अनुसार उनके कार्यकलाप हों, तभी इन शिक्षकों का अध्यापन प्रभावी हो सकेगा । इसके लिए आवश्यक है कि नई भर्ती के समय शिक्षक के पद पर ठोक बजा कर सही व्यक्ति का चयन किया जाये । किसी भी शिक्षण कार्य की सफलता के लिए शिक्षक का उसमें विश्वास होना प्रथम स्थान पर जरूरी है । इसी भांति अध्यापन के लिए समर्पित, शिक्षा में प्रयोगों का समर्थक, सत्य का अन्वेषक तथा अनुसंधान कार्य में रुचि सम्पन्न आशार्थियों को ही अध्यापक के पद पर नियुक्त किया जाय, केवल तभी शिक्षण संस्थायें विज्ञान, अनुसंधान तथा संस्कृति के संरक्षण, परिवर्द्धन तथा संशोधन के केन्द्र बनकर उत्तरदायित्व निभा सकेंगी ।

8. जीवन जीने की कला

जीवन समरसतापूर्ण एवं रचनात्मकता के साथ बीते, जीवन कलात्मक हो, इसके लिए संगीत, नृत्य या चित्रकला का जानना ही काफी नहीं है बल्कि आज इस वृहद् संदर्भ में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। आज जीवन स्तर को जीवन की गुणवत्ता का पर्याय माना जाता है तथा इस दृष्टि से जीवन को प्रति व्यक्ति आय या राष्ट्रीय सकल उत्पाद से आंका जाता है । पर यहां ध्यान दिया जाना चाहिये कि क्या हमारा जीवन स्तर या जीवन की गुणवत्ता मात्र हमारे रहने के मकान, भोजन, पोषाक या कार से ही आंकी जा सकती है? क्या हमारे जीवन स्तर पर हमारी संवेदना, विचारधारा जीवन के प्रति दृष्टिकोण आदि का प्रभाव नही पड़ता है? ईर्ष्या, स्वार्थ, दुश्चिन्ता, थकान, असमंजस से भरा मस्तिष्क कैसे उच्च गुणवत्ता वाला जीवन दे सकता है ?

शिक्षा का उद्देश्य आर्थिक विकास ही नहीं वरन् संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास होना चाहिए । जब बच्चों को इनाम का प्रोत्साहन देकर काम करने की कहते हैं तो काम में आनन्द की बात नहीं करते हैं या आनन्द गौण विषय हो जाता है अर्थात ऐसी स्थिति में आनन्द को काम से पृथक किया जा रहा है । ऐसा मस्तिष्क केवल पुरस्कार के लिए ही काम करेगा अन्यथा वह उदास रहेगा, काम के प्रति तटस्थ भी हो सकता है, संभव है काम कष्टप्रद बन जाये । जीवन जीने की कला में प्रत्येक वस्तु से आनन्द पाना सम्मिलित है, भले ही उस वस्तु के उपयोग करने का फल कुछ भी हो । ऐसी विचारधारा के विकसित होने पर ही मनुष्य सृजनात्मकता के साथ काम करेगा, उसमें संवेदनशीलता होगी तथा दूसरों के दुख दर्द, हारी-बीमारी का भी ध्यान रखेगा तथा केवल अपनी निजी महत्वाकांक्षाएं ही प्रमुख नहीं होंगी ।

9. सर्वतोमुखी विकास

आज की शिक्षा चिकित्सक, तकनीशियन, वैज्ञानिक, प्रबन्धक, विधि विशेषज्ञ एवं अभियांत्रिकी तैयार करने पर तो जोर देती है । कुछ अंशों में क्षेत्र विशेष के जानकार लोगों की आवश्यकता होती है । पर ध्यान में यह रहना चाहिये कि हम मानव पहले हैं तथा इंजिनीयर, चिकित्सक या वैज्ञानिक बाद में । अत: पूर्ण तथा सार्थक मानव की कीमत पर विशिष्टीकरण का आग्रह नहीं किया जाना चाहिये । मनुष्य के गुणों या कौशलों को मुख्यत: चार भागों में बांटा जा सकता है । यथा -

1. आन्तरिक - अन्त: बोध, सजगता, अवलोकन, निरीक्षण तथा अवधान आदि ।

2. वैचारिक - ज्ञान, स्मृति कल्पना, तर्क, विश्लेषण, आलोचना, विज्ञान, गणित, भाषा, एकाग्रता, अन्तर्ज्ञान, सूझबूझ आदि ।

3. अनुभव - प्रसन्नता, सौन्दर्य, विस्मय, विनोद, कला, संस्कृति, संगीत काव्य, साहित्य, सहानुभूति, प्यार, प्रेम , मित्रता, संलंग्नता, स्नेह, इच्छा, डर, घृणा, ईर्ष्या, क्रोध आदि

4. अन्य - दृष्टिकोण, वृत्ति, बुद्धिमानी, योग, शान्ति, समरसता, समझ, बुद्धि, अन्तर्ज्ञान, सूझबूझ आदि ।

गुणों की यह सूची पूरी नही है, विषय के जानकार इसमें और भी कई गुणों से जोड सकते हैं । सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर लगता है कि कुछ गुण एक से अधिक वर्ग में दोहरा दिये गये हैं, इस प्रकार वर्गीकरण को भी पूर्णतया स्पष्ट नहीं कहा जा सकता । कई बार सोचना, अनुभव करना तथा अवलोकन या निरीक्षण की क्रियाएं मानव मन में एक साथ चलती रहती हैं तथा एक दूसरी के साथ प्रतिक्रिया करती है । इसलिये विवेचन करने की दृष्टि से यह वर्गीकरण ठीक है ।

आज की शिक्षा में वैचारिक क्रियाओं पर अधिक आग्रह रहता है । अनुभव आधारित क्रियाओं पर तुलनात्मक रूप से कम ध्यान दिया जाता है । मानव के सर्वांगीण विकास के लिए इन वर्गों में बताये काफी गुणों पर न केवल बल दिया जाना चाहिए बल्कि गहरी समझ विकसित की जानी चाहिए । यह ध्यान रखा जाना अति

आवश्यक है कि एक वर्ग के विकास पर ध्यान देते समय अन्य वर्ग के प्रति तटस्थ न हो जायें । इसका अर्थ यह भी है कि बच्चों को कठोर परिश्रम के लिए तैयार करते समय दण्ड तथा भय का प्रयोग कदापि न किया जाय । यदि ऐसा किया गया तो विद्यार्थी में समालोचनात्मक वृत्ति, बुद्धि तथा पहल जैसे गुणों की क्षति हो जायेगी। प्रोत्साहन तथा प्रेरणा के लिए तुलना तथा प्रतियोगिता का भी सहारा नहीं लेना चाहिए, इससे प्रेम नष्ट होता है तथा क्रोध को बढ़ावा मिलता है। कुछ उदाहरणों में पुरस्कार से भी बचना चाहिये क्योंकि इससे असंवेदशीलता तथा लालच बढ़ता है ।

कठिन कार्य यह है कि विद्यार्थियों को सिखाने के लिये शिक्षक किन किन प्रेरकों व प्रोत्साहनों का अध्यापन के समय उपयोग करे ? चुनौती यह है कि विषय को किस तरह आकर्षक एवं सुन्दर रूप में उनके सामने प्रस्तुत किया जाय जिससे शिक्षा उनके लिए आनन्ददायी बन सके तथा उदासीनता तथा अरुचि से बचा जा सके। यदि शिक्षक यह चुनौती स्वीकार करते हैं तो उन्हें ही बालकों के लिए शिक्षा को रुचिप्रद तथा जीवन्त बनाने के साधन तथा उपाय खोजने होंगे । एक अच्छा विद्यालय वह है जहां बच्चे हंसते खेलते प्रसन्नतापूर्वक रहें । केवल बाह्य परीक्षा का उच्चतम परिणाम ही महत्वपूर्ण नहीं है । शिक्षक का सही कार्य ही यह है कि वह बालक में प्रकृति से छिपी सुन्दरता को उद्घाटित करे । निश्चय ही यह सुंदरता कला, संगीत, अभिनय, गणित, भाषा, साहित्य, विज्ञान, खेलकूद, प्रकृति अवलोकन में निहित है, वास्तविकता यह है कि जीवन का हर क्षेत्र इससे जुड़ा हुआ है । एक पूर्ण व सही अर्थों में शिक्षित एवं विकसित बालक से क्या आशय है - यह प्रत्येक शिक्षक को जानना चाहिए (आज की परिवर्तित स्थितियों में केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि इस पूर्ण एवं सही अर्थों में विकसित बालक को वैश्विक सन्दर्भ में देखना होगा। क्या इस कार्य मे शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका से मना किया जा सकता है ?)

शिक्षा देने के कार्य में कठिनाइयां

जिस प्रकार की गुणवत्ता वाली शिक्षा का ऊपर विवेचन किया गया है, उसके मार्ग में कई कठिनाइयां हैं । सबसे बड़ी कठिनाई तो यही है कि इस प्रकार की शिक्षा स्वयं माता पिता, अभिभावक तथा शिक्षकों को भी नहीं मिली है जिससे वे इस प्रकार की शिक्षा का महत्व समझ सकें । इसलिये मौजूदा शिक्षा से जुड़े लोग इस संबंध में कुछ सोच ही नहीं सकते । जन साधारण प्रश्न करते हैं, कहते है पर शिक्षक तथा माता पिता क्या कर रहे हैं - यह वे जानते ही नहीं है । इसके लिये जनसाधारण को भी बुद्धिमान, सृजनशील, मौलिक बनना होगा, केवल आग्रह करने से काम नहीं चलेगा।

नवीन सन्दर्भों में शिक्षा का कार्य विद्यार्थी में केवल सूचना तथा कौशल भर देना ही नही है वरन् बालक को सृजनशील तथा संवेदनशील बनाना भी है । इसके लिए शिक्षण की कोई एक पूर्व निश्चित विधि या तरीका नही है । इन गुणों के विकास के लिये कोई पूर्व निर्धारित अभ्यास कार्य नही हो सकता । पर यदि शिक्षण के लिये घर तथा विद्यालय पर सही रूप में उत्साहवर्द्धक वातावरण है तो इन गुणों को बालक में विकसित किया जा सकता है ।

नवीन सन्दर्भों में शिक्षा का कार्य विद्यार्थी में केवल सूचना तथा कौशल भर देना ही नही है वरन् बालक को सृजनशील तथा संवेदनशील बनाना भी है । इसके लिए शिक्षण की कोई एक पूर्व निश्चित विधि या तरीका नही है । इन गुणों के विकास के लिये कोई पूर्व निर्धारित अभ्यास कार्य नही हो सकता । पर यदि शिक्षण के लिये घर तथा विद्यालय पर सही रूप में उत्साहवर्द्धक वातावरण है तो इन गुणों को बालक में विकसित किया जा सकता है । इस प्रकार के वातावरण निर्माण में शिक्षकों की अहम भूमिका है जिसमें वे सहयोग से, मित्रता, आनन्द एवं समरसता के साथ कठिन श्रम करें, उनकी अपनी निजी कोई महात्वाकांक्षा बाधा न पहुंचाये, आपस में होड़ या प्रतिस्पर्द्धा न हो, प्रश्न पूछने , आलोचना करने का मुक्त-स्वच्छन्द वातावरण हो तथा सामूहिक अधिगम का आनन्द प्राप्त करें । दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि स्वयं शिक्षकों को भी इसी प्रकार काम करना चाहिए तथा जीवन जीने का तरीका विकसित करना चाहिए ।

पानी सिर से उतर गया है, अब उपदेश देने से काम नही चलेगा । बालक वातावरण से सीखता है, जो उसके चारों ओर हो रहा है, उसी का उस पर प्रभाव पड़ता है, शिक्षक जो कक्षा में कहता है उसका प्रभाव बालक पर तुलनात्मक रूप से उतना नहीं पड़ता जितना शिक्षक के व्यवहार का पड़ता है । शिक्षक यदि कक्षा में कुछ कहता है तथा व्यवहार में कक्षा में या कक्षा के बाहर वैसा नहीं करता है तो बालक शिक्षक के व्यवहार को भी सीख लेंगे, फिर शिक्षक भले ही वैसा न सीखने के लिए कक्षा में कहता रहे । इस स्थिति में यह भी संभव है कि बालक शिक्षक को ढोंगी समझने लगें

इसलिए अच्छा यह होगा कि उपदेश न दीजिये । यदि बच्चा कोई काम नहीं कर पाता है तथा अध्यापक उसे दण्ड देता है, तो जिसकी लाठी उसकी भैसं सिद्धांत के अनुसार बालक दण्ड स्वीकार करता है । क्योंकि समर्थ के रूप में शिक्षक (कमजोर को) दंड दे सकता है । यहां बहुत सावधानी की जरूरत है । ऊपर के विवेचन के अनुसार शिक्षा देना सरल कार्य नहीं है । बच्चा कहीं गई या उपदेश के रूप में सुनाई गई मान्यताएं ही नहीं सीखता है वरन वह वे मान्यताएं या मूल्य भी सीखता है जो वह अपने चारों ओर देखता है ।

वयस्क के रूप में नागरिक बौद्धिक दृष्टि से बालक की अपेक्षा अधिक जानता है । पर वयस्क भी जीवन के समग्र सन्दर्भ में बालक के समान ही समस्यायें पाते हैं जैसे घबराहट, डर, थकान, उदासीनता या ऊब, इच्छा तनाव, दुश्चिन्ता, हिंसा विरोध, कलह आदि । इसलिये बच्चों के साथ ही शिक्षकों सहित सभी वयस्कों को इन पर भी ध्यान देना चाहिये तथा इन समस्याओं के हल करने के साधन ढूंढने चाहिये । इन प्रयत्नों के साथ पूरी ईमानदारी, नम्रता, संवदेनशीलता एवं धैर्य चाहिये । इन चुनौतियों को स्वीकार करना शिक्षक के सामने बड़ी समस्या है, इसका कोई आसान रास्ता या शार्टकट नहीं है । सच्चाई यह है कि अन्तर्दृष्टि कोई नहीं सिखा सकता, इसके विकास के लिए कोई कुछ सहायता नहीं कर सकता पर किसी की महत्वाकांक्षाओं तथा अति सक्रियता के बोझ से दब भी नहीं जाना चाहिये ।

वयस्क के रूप में नागरिक बौद्धिक दृष्टि से बालक की अपेक्षा अधिक जानता है । पर वयस्क भी जीवन के समग्र सन्दर्भ में बालक के समान ही समस्यायें पाते हैं जैसे घबराहट, डर, थकान, उदासीनता या ऊब, इच्छा तनाव, दुश्चिन्ता, हिंसा विरोध, कलह आदि । इसलिये बच्चों के साथ ही शिक्षकों सहित सभी वयस्कों को इन पर भी ध्यान देना चाहिये तथा इन समस्याओं के हल करने के साधन ढूंढने चाहिये । इन प्रयत्नों के साथ पूरी ईमानदारी, नम्रता, संवदेनशीलता एवं धैर्य चाहिये । इन चुनौतियों को स्वीकार करना शिक्षक के सामने बड़ी समस्या है, इसका कोई आसान रास्ता या शार्टकट नहीं है ।

निष्कर्ष

मानवता को उच्च आदर्शों के साथ उदाहरण स्वरूप लिया गया है। मानवता के सामने खड़ी समस्याऐं कानून बनाकर, सामाजिक तथा राजनैतिक सुधारों, वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास, वृहद् ज्ञान, अधिक सम्पति, अधिक शक्ति तथा अधिक नियन्त्रण से ही हल की जा सकती हैं। इनमें से कुछ समस्याएं ऐसी भी हो सकती हैं जो तत्काल तो हल हो जायें पर समय बीतने पर फिर उग्र रूप में पैदा हो जायें। इसलिये कुछ समस्यायें तो अस्थायी रूप से ही हल होंगी । प्रगति सभी चाहते हैं पर इसका रास्ता लम्बा है । ठण्डे मस्तिष्ठक से गंभीरता के साथ यह सोचने की आवश्यकता है कि यदि अन्त:करण या अन्तरात्मा का संशोधन नहीं हुआ, हृदय का परिमार्जन नहीं हुआ तो शीघ्र ही हम असफल प्राणियों की सूची में जोड़ दिये जायेंगे , युगों से ऐसे लोगों की संख्या बढ रही है । यह भी निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता कि बन्दर के रूप में आदिमानव का विकास उसके अस्तित्व के लिए जरूरी था, यह भी समय ही बतायेगा। अस्तित्व के लिए केवल प्रगति का ज्ञान ही जरूरी नहीं है वरन् प्रकृति के साथ सहज एवं समरसतापूर्ण रहने के लिये सहयोग की भावना एवं आपसी प्रेम भी जरूरी है । चींटी मानव से ज्यादा भाग्यशाली है, वह मानव से ज्यादा जी सकती है। आज यदि अधिक योग्यता या अधिक कार्य दक्षता न भी हो लेकिन साथ साथ काम करने तथा दुख दर्द बांटने के लिए अधिक संगठन, अधिक प्रेम, अधिक संवेदनशीलता, अधिक भाईचारा तथा अधिक क्षमता हो तो स्थिति बेहतर हो सकती है ।

ऊपर दिये इस विवेचन के अनुसार कहा जा सकता है कि शिक्षा को इक्कीसवीं सदी में केवल प्रगति पर ही ध्यान नहीं देना चाहिए बल्कि हर मानव के अन्त: करण की शुद्धि, उसके संशोधन पर ध्यान दिया जाना प्रथम स्थान पर आवश्यक है । ऐसा भी नहीं है कि पहले ऐसा नहीं कहा गया हो, या आग्रह नही रहा हो । सदियों से दार्शनिक और संत ऐसा बताते रहे हैं। पर मानव ने उनके कहने के अनुसार काम नहीं किया, उसके संकेतों पर ध्यान नहीं दिया और मात्र अपने अस्तित्व की ही चिन्ता की, उसे बनाये रखा। अब समय आ गया है कि यदि इस पर ध्यान नही दिया गया तो इस धरती पर विज्ञान तथा तकनीकी प्रगति से एवं परमाणु शक्ति साधनों से मानव जीवन असंभव नहीं हो तो उसकी दुर्गति अवश्य हो जायेगी, जीने योग्य स्थितियां नहीं रहेंगी । इसलिये मानवता के बेहतर हित में इस समस्या पर तत्काल ध्यान दिये जाने की शीर्ष स्थान पर आवश्यकता है ।◆